पाकिस्तान का सफरनामा-१

स्तंभ/अनन्तर/जनसत्ता/१२ फरवरी, २००६

जिन्ना के शहर में

ओम थानवी

पाकिस्तान एअरलाइंस के बोइंग में दिलचस्प वामपंथी जमावड़ा था। दोस्तों में सीताराम येचुरी और सहमत वाले राजन थे। इप्टा के अध्यक्ष एके हंगल थे। नेता-अभिनेता राज बब्बर और अपनी किताबों का बोझ ढो रहे अरुण माहेश्वरी भी थे। सब कराची में आयोजित सज्जाद जहीर जन्मशती समारोह में शिरकत करने जा रहे थे। जहीर भारत में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रवर्तक थे। बाद में पाकिस्तान जाकर उन्होंने वहां कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

मेरे लिए कराची सिर्फ पड़ाव था। मंजिलें थीं मूअन-जो-दड़ो, हड़प्पा और तक्षशिला। इनमें हड़प्पा को हमनशीं हमीद हारून ने यह कहकर निकलवा दिया कि सिर्फ जमीं को सलाम करना है तो हो आओ, वरना देखने को अब वहां कुछ नहीं। सज्जाद जहीर जलसा पाकिस्तान में तक्कीपसंद जमात से मिलने का एक मौका हो गया, हालांकि वहां थोड़ी देर के लिए ही जा सका।

कराची के जिन्ना अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर समारोह के कार्यकर्ता ही नहीं, शहर के नेता और कुछ पाकिस्तानी फिल्म अभिनेता भी आए हुए थे। ये राज बब्बर को लिवाने आए थे। बब्बर समारोह के खास मेहमान थे। उनका विवाह सज्जाद जहीर की बेटी नादिरा से हुआ है। शायद इसी हवाले से वे आए हों। बुलाया इसलिए गया होगा कि भारत के फिल्मी सितारों की कद्र पाकिस्तान में देवताओं की तरह है। हिंदी फिल्में पाकिस्तान में भारत से ज्यादा लोकप्रिय हैं, इसके बावजूद कि सिनेमाघरों में वे दिखाई नहीं जा सकतीं।

हवाई अड्डे के बाहर बब्बर का जलवा था। कामरेड राज बब्बर जिंदाबाद के नारों के बीच पत्रकारों और कैमरे वालों ने सीताराम येचुरी- जो जलसे के मुख्य अतिथि थे- और नब्बे वर्षीय एके हंगल को किनारे धकेल दिया, जिनके बब्बर ने लाउंज में पांव छुए थे। बब्बर के जाने के साथ भीड़ और पुलिस दोनों छंट गए; पार्टी के कार्यकर्ताओं ने येचुरी और हंगल को ढूंढ़ कर माला पहनाई। एक माला मेरे हिस्से में भी आ गई। मान न मान मैं तेरा मेहमान और किसे कहते हैं!

हम मंसूर सईद के जिम्मे थे। वे पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य हैं। विमान में मैं येचुरी से मजाक कर रहा था कि आपको छोड़ कर हमारे साम्यवादी मुख-मुद्रा में रुआंसे-से क्यों रहते हैं। और यहां मंसूर सईद का मिजाज इतना अलमस्त था कि देर तक वे हमें, बगैर किसी अफसोस के, असबाब सहित पार्किंग में घुमाते रहे। कतार में खड़ी हर कार की पीठ पर अपनी रिमोट वाली चाबी का निशाना साध कर बटन दबाते और बुदबुदाते, नहीं यह नहीं है! हिम्मत करके मैंने पूछा, माजरा क्या है? बोले, अजी कोई मसला नहीं है, कार कहां रखी थी यह भूल गया हूं। अपनी कार नहीं पहचान पा रहे हैं? मैंने हैरानी प्रकट की। अपनी कहां, आप हजरत की पेशकदमी के लिए किसी की मांग कर लाया हूं! बहरहाल, एक कार खुल गई। वही है न? बोले, कोई मसला नहीं है जनाब!

मगर मसला अभी बाकी था। बाहर के दरवाजे पर पहुंचे तो पता चला मंसूर भाई की जेब में पार्किंग वाली पर्ची कहीं दुबक गई है। पीछे कारों के हॉर्न बज रहे थे। पार्किंग का द्वारपाल खीझ कर बोला, आपकी ही कार है? उन्होने प्यार से कहा, नहीं। मगर पर्ची मेरे पास जरूर थी। अचानक कुछ सोच कर उन्होंने अपना रूमाल जेब से निकाला और जादूगर की तरह हवा में ऐसा फटका लगाया कि पर्ची पार्किंग वाले के कदमों में जा गिरी। हमसे ज्यादा वह मुतमईन जाहिर हुआ। मंसूर साहब ने गाड़ी आगे बढ़ाई, ''अब कोई मसला नहीं...।''

पाकिस्तान में आपको यह 'मसला' शब्द कई अर्थों में सुनने को मिलेगा, भाषा के पचड़े में चाहे आपकी दिलचस्पी हो या नहीं। मुद्दा, बात, दिक्कत, हकीकत वगैरह के अर्थ में कोई दर्जन भर प्रयोग मैंने इस 'मसले' में वहां देखे। दूसरा एक प्रयोग जो बरबस हमारा ध्यान खींचता है, वह है देखिए-आइए-तशरीफ रखिए जैसे जुमलों की जगह देखें-आएं-तशरीफ रखें का इस्तेमाल। अपवाद के बतौर, बेहद आदर के इजहार में, आइए-बैठिए बोल लिया जाता है। 'हवाले से' जुमला भी यहां ज्यादा इस्तेमाल होता है और भारत से अलग तर्ज में होने के कारण हमारा ध्यान बंटाता है। मगर इस तरह के छोटे-मोटे फर्क आप छोड़ दें और थोड़ी सूझ बरतते हुए राजनीति की जगह सियासत बोलने लगें तो जब तक आप न बताएं पाकिस्तान में लोग आपको 'पराए' मुल्क का नहीं मानेंगे! आप हिंदी बोलें, वे कहेंगे माशाअल्लाह आपकी उर्दू बहुत उम्दा है। उन्हें नहीं मालूम कि जब तक बाजार में खड़े रहें और साहित्य और अकादमीय हलकों की जद में- या पंडित-मौलवियों के कारोबार में- न दाखिल हों, हिंदी और उर्दू जुदा नहीं होती हैं।

कराची पहुंच कर जब सब थकी आंखों से कराची की ढलती शाम निहार रहे थे, एके हंगल की आंखों में अजीब चमक थी। उन्होंने सत्तावन साल बाद कराची में कदम रखा है। एअरपोर्ट की ठीक नाक पर तने मैकडोनल्ड्स के 'एम' को देख कर चौंके। पुराने वामपंथी हैं। एक मेजबान ने तपाक से कहा, हैरान न हों, आपके यहां ये (अमरीकी) बाद में पहुंचते हैं, यहां पहले धमकते हैं। हंगल मैकनोल्ड्स

भूल गए। पूछा, आप मुझे जानते हैं? आपको कौन नहीं जानता, शोले तो मैंने बीस बार देखी होगी। 'अरे मैंने बड़ी मेहनत की थी, उस एक दृश्य के लिए', और प्रफुल्ल हंगल फिल्म का संवाद सुनाने लगे।

उनका पूरा नाम अवतार कृष्ण है। दो सौ फिल्मों में काम कर चुके चरित्र अभिनेता को हवाई अड्डे पर लोग पहचानें, यह स्वाभाविक ही है। दिल्ली हवाई अड्डे पर भी ऐसा ही हुआ था। तब टीवी नहीं था और लोग अभिमान, नमकहराम या शोले जैसी फिल्में कई बार देखते थे। लेकिन- कम से कम उत्तर भारत में- उनके असल रंगकर्मी रूप की लोगों को खास जानकारी नहीं है। रंगमंच से उनकी अटूट प्रतिबद्धता है। वे साठ साल से इप्टा में सक्रिय हैं।

मुझे भी हंगल साहब का कोई नाटक देखने का मौका नहीं मिला है। फिल्में उनकी मैंने भी बहुत देखी हैं। पर किसी में उनकी छाप दिल में बैठी नहीं। कोरा कागज, एक चादर मैली सी और यहां तक कि गरम हवा में भी नहीं। ऐसा भी नहीं है कि प्रेम चोपड़ा या जॉय मुखर्जी की तरह मुझे उनके अभिनय से चिढ़ रही हो। मुमकिन है नाटकों में उन्होंने अपना असर दिखाया हो। आखिर ओम शिवपुरी से मनोहर सिंह तक कई उदाहरण हमारे सामने हैं, जो रंगमंच पर निर्विवाद रूप से कद्दावर अभिनेता होते हुए भी सिनेमा में बौने होकर प्रकट हुए। हंगल साहब ने बताया कि उन्होंने ऋत्विक घटक के साथ भी नाटक किए थे।

वैसे अभिनय लगता है, उनके स्वभाव में है। दिल्ली से कराची तक रास्ते में उन्होंने इतनी दफा जब पर हाथ रखा और चौंक कर कहा कि मेरा पासपोर्ट कहां गया, मुझे लगने लगा कहीं मेरा पासपोर्ट तो नहीं खो गया।

हंगल उन इने-गिने लोगों में थे जो बंटवारे के बाद पाकिस्तान में ही रहना चाहते थे। पेशे से वे दर्जी थे। सियालकोट में अपनी दुकान बंद कर वे कराची आ बसे। यहां उन्होंने नाटक किए। पहले वे कांग्रेसी थे, बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य होकर एटक में सक्रिय हो गए। उन्होंने बताया कि बंटवारे के चार महीने बाद इप्टा के अहमदाबाद अधिवेशन में वे सिर्फ भाग लेने भारत आए और कराची लौट गए। यहां कुछ पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। डेढ़ वर्ष जेल में रहे। सज्जाद जहीर की सलाह पर हंगल एक दरख्वास्त के सहारे कराची छोड़ कर बंबई आ गए।

तब से कई बार उन्होंने यहां आने का मंसूबा किया। दो बार कार्यक्रम बन गया। पर शिव सेना ने हल्ला कर उन्हें रुकवा दिया। देशद्रोही कह कर अपमानित किया, तोड़फोड़ की। हंगल बोले, इन शैतानों से लोग इतना डरते हैं कि कुछ समय के लिए फिल्मों में काम तक मिलना बंद हो गया।

अब पहली बार कराची लौटे हैं तो उनकी पूरी काया में एक सुखद खुदबुद है। कराची की स्मृति वे अपनी हथेलियों के बीच बड़े प्यार से सहेजे हुए हैं। एक लिफाफा है। उसमें क्या है?

नाटक 'प्रायश्चित' की तस्वीर। गांधी जी की छुआछूत विरोधी मुहिम की प्रेरणा से यह नाटक उन्होंने सत्तर साल पहले कराची में खेला था।

आर्ट काउंसिल- जहां सज्जाद जहीर समारोह का उद्घाटन था- से लौट कर सारी रात वे हमें कराची के संस्मरण सुनाते रहे। सुबह के तीन बजे जब येचुरी और मैं दोनों उठ खड़े हुए तब जाकर उन्होंने भी जम्हाई ली। उनके जीवट और कार्यकलाप पर येचुरी इतने फिदा थे कि दिल्ली लौट कर उन्होंने एके हंगल के लिए पद्मभूषण की कारगर सिफारिश की। मैंने मुंबई फोन कर उन्हें बधाई दी। बोले: मैं न कहता था कराची में कुछ है!

क्या मंसूर सईद और एके हंगल की मस्ती में कोई साम्य है? यह जिंदादिली क्या कराची की फितरत में है? लालकृष्ण आडवाणी के चेहरे की तरफ मत देखिए। वे अपवाद होंगे। पर क्या उनमें भी पिछले साल कराची की विवादग्रस्त यात्रा में विनोद नहीं जागा था, जब उन्होंने कहा कि ठीक से देखें मेरे सिर पर सींग नहीं हैं!

अरब की खाड़ी के तट पर बसा कराची पाकिस्तान के चार सूबों में एक सिंध की राजधानी है। बाकी तीन सूबे हैं पंजाब, बलूचिस्तान और उत्तर-पश्चिमी फ्रंटियर। बंटवारे के बाद कराची नए मुल्क की राजधानी बना। यह मुहम्मद अली जिन्ना (जिनाह) का शहर था। बारह साल बाद धुर उत्तर में, रावलपिंडी के पास मारगला पहाड़ियों की तलहटी में, नई राजधानी इस्लामाबाद को आबाद किया गया।

कराची ज्यादा पुराना शहर नहीं है। मुगल सल्तनत की तरफ खिड़की खोलने वाली यहां एक भी मस्जिद या मकबरा नहीं। डेढ़ सौ साल पहले यहां तीन टापुओं पर सिर्फ मछुआरों की झुग्गियां हुआ करती थीं। अंग्रेजों ने शहर बसाया। शुरू में कराची मुंबई के अधीन था। बाद में हैदराबाद की जगह यह सिंध की राजधानी बना। सिंध व्यवसाय का गढ़ तो सिंधु घाटी सभ्यता के दौर में चार हजार साल पहले भी था। यहां से सूत बाहर जाता था। समझा जाता है कि सूती कपड़े के लिए ग्रीक शब्द 'सिंदोनियन' और लैटिन 'सिंदोन' का स्रोत 'सिंध' रहा होगा। सिंध की राजधानी बनने के बाद कराची बड़ा बंदरगाह बना और प्रांत के ज्यादातर बड़े व्यवसाय और उद्योग यहां कायम हो गए।

आज भी कराची पाकिस्तान का सबसे बड़ा शहर है। कोई डेढ़ करोड़ उसकी आबादी है। उसे मुल्क की आर्थिक राजधानी कहा जाता है और मुंबई से तुलना की जाती है। इस वजह से भी कि अंग्रेजी वास्तुकला के बंगले, ऊंचे गोल खंभों पर टिकी इमारतें, गॉथिक भव्यता वाले चर्च, बैंक और रेलवे स्टेशन यहां भी इफरात में हैं। लेकिन शहर के खानदानी बाशिंदे उदास हैं और शहर को अब बरबाद दशा में पहुंचता बताते हैं। वे मानते हैं कि बंटवारे के बाद भारत की तरफ से ही नहीं, मुल्क के भीतर से लाखों लोग- कुछ रोजगार और कुछ नई राजधानी के आकर्षण में- यहां आ बसे। यह बोझ शहर बर्दाश्त नहीं कर पाया। लिहाजा शहर के पुराने रुतबे की दास्तान किस्सों-किताबों

की चीज हो चली है। सिंध सूबे की शिक्षा मंत्री डॉ. हमीदा खुहरो कहती हैं कि बंटवारे के दस साल तक कराची की महिमा कायम थी। मगर मुल्क की आर्थिक धुरी बन जाने के बाद मुश्किलें बहुत बढ़ीं। धीमे-धीमे लोगों के चेहरों पर फितरी हंसी की जगह ओढ़ी हुई मुस्कान आ गई और बाद में वह गायब ही हो गई!

इस सब के बावजूद मुझे कराची मुंबई के मुकाबले बेहतर शहर लगा। एक तो इसलिए कि उसमें अभी भी मुंबई जितना भीड़-भड़क्का और शोर नहीं है। उसकी बसावट खुली है और सड़कें चौड़ी हैं। दूसरे, पूरे शहर में जहां जाएं आसमान दिखाई देता है। यानी ऊंची बहुमंजिली इमारतों का जमघट नहीं है। हबीब बैंक और कुछ होटल ही बड़े हैं। मगर डराते नहीं हैं। छोटी इमारतें, जहां कहीं हों, सुंदर तो लगती ही हैं, उनके बीच आदमी भी आदमकद बना रहता है। कराची के सागर तट भी साफ-सुथरे और सुव्यवस्थित हैं। रात को क्रिकेट मैदानों जैसी रोशनी उन पर बिखेरी जाती है। सबसे अहम बात यह कि कारखानों के धुएं ने आसमानों को बहुत मैला नहीं किया है।

हमीद, जिनके दादा के नाम पर कराची के बीचोबीच एक लंबी 'अब्दुल्ला हारून रोड' है, शहर के बारे में इस राय में एक दूसरा आयाम जोड़ते हैं: ''कराची से मेरा लगाव लाहौर के लोगों की तरह नहीं है जो एक अकीदे (आस्था) की तरह अपने शहर से मुहब्बत रखते हैं। कराची मुझे पसंद है क्योंकि इसमें एक अंदरूनी इंजिजाब है जो शहर की पहचान पर पड़ने वाली हर चोट का मुकाबला करता है। यहां की बदरंग चाल के घरों में भी एहतिजाज (प्रतिरोध) का जज्बा भीतर कहीं गहरे मौजूद है।''

हंगल हमीद की राय से इत्तफाक रखते हैं, भले उनके जमाने के कराची से शहर का रंग-रूप, स्वाभाविक तौर पर, बदल गया है। अब पाकिस्तान का यह सबसे आधुनिक शहर कहा जाता है। पैसा है तो आधुनिक भी होगा। विदेशी कारें हैं। रेस्तरां शाम को खचाखच भरे रहते हैं। पर्यटक की तरह शहर को देखने निकलें तो एक अजायबघर और एक जिन्ना के मजार को छोड़ कर यहां कोई और जगह नहीं है।

कराची बाजारों का शहर है। सदर बाजार, सर्राफा बाजार, जायनाब बाजार, खजूर बाजार, बोहरी बाजार, बर्तन गली। और बाजारों में हरदम जैसे ईद की रौनक। बाजार रात ग्यारह बजे तक खुले रहते हैं। खरीदारों के रंग-बिरंगे परिधान। बुर्कों की बाढ़ यहां नहीं है। मानो चलन से उठ रहे हों। औरतें पतलून कम पहनती हैं, पर फैशन में सलवार के पायंचे को वे टखने से ऊपर ले आई हैं। पुरुषों के सलवार-कमीज के 'सूट'- जो पूरे मुल्क में घर-दफ्तर सब जगह राष्ट्रीय पोशाक की तरह पहने जाते हैं- यहां कलफ चढ़े मिलेंगे। ऐसा नहीं है कि शहर में गरीबी नहीं होगी। बड़े शोरूम हैं और खोमचे वाले भी हैं। पर भिखारी एक नहीं दिखा। झुग्गियां भी नहीं दिखाई दीं। छावनी की सख्ती इसकी एक वजह हो सकती है।

शहर की बसों पर इंच-दर-इंच भड़कीली पच्चीकारी है। आगे यह कलाकारी आपको पेशावर तक मिलेगी। लेकिन ट्रकों पर।

सदर में कई दुकानें भारत के शहरों के नाम पर हैं। जैसे हमारे यहां कराची बेकरी, लहौरियां दी हट्टी या पिंडी क्लोथ हाउस हैं, यहां दिल्ली स्वीट्स हाउस, अंबाला स्वीट्स या दिल्ली कबाब हाउस है। दिल्ली स्वीट्स की सीढ़ियां चढ़ कर हमने 'कराची का हलुआ' मांगा। हालांकि उसे चबाना एक कभी खत्म न होने वाली मशक्कत जैसा है। हां, सदर में कभी एक कॉफी हाउस भी आबाद था। जैसे हमारे यहां उनके दिन लदे, यहां भी वे तरक्की की भेंट चढ़ गए हैं।

सबसे दिलचस्प बात यह लगी कि यहां हर कोई नफीस उर्दू बोलता दिखाई पड़ता है। इसकी बड़ी वजह यह है कि कहने को कराची सिंध की राजधानी है, जबकि यहां बड़ी आबादी मुहाजिर (भारत से गए मुसलमान), पख्तून, बलोच और पंजाबी समुदाय की है। वे संपर्क भाषा के बतौर उर्दू ही बोलते हैं। १९७१ में उर्दू के मुद्दे पर पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश बन गया तो सिंध में अलग जोश चढ़ा। सिंध की असेंबली ने एक बिल पास कर सिंधी भाषा को सूबे की राजकीय भाषा करार दे दिया। इसके खिलाफ दंगे भड़क गए। पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव इमदाद काजी बताते हैं कि 'जंग' अखबार में रोज काले हाशिए में एक तर्जिया नारा छपता था जो बहुत मशहूर हुआ, ''उर्दू का जनाजा है, जरा धूम से निकले।'' सरकार ने बाद में सिंध असेंबली का वह कानून रद्द कर दिया।

''**म**गर कराची से बाहर निकलते ही आपको सिंधी जुबान ही सुनाई पड़ेगी।'' काजी कहते हैं। वे खुद लाड़काणा के हैं। उनकी उर्दू में सिंधी की लोच और सुगंध है। पाकिस्तान में भारत की तरह बिखरी हुई कम्युनिस्ट पार्टियां नहीं हैं। बरसों की पाबंदी और बीच-बीच में छुका-छिपी भरी सक्रियता के बाद वहां पार्टी में जान फूंकी गई है। भारत के बारे में व्याप्त गलतफहमियों को- जो अनंत हैं- दूर करने में पार्टी ने बड़ी भूमिका निभाई है।

उन्होंने बताया कि पाठ्यक्रमों में यहां गांधीजी समेत किसी बड़ी भारतीय हस्ती की शख्सियत के बारे में नहीं पढ़ाया जाता है। भारत के बारे में सिर्फ दो बातें निसादी कुतुब (पाठ्य-पुस्तकों) में हैं, एक तो यह कि जंगे-आजादी में पाक के तरफदार मुसलमान नेता कौन थे और दूसरी यह कि मुसलमानों के साथ वहां भारी ज्यादती हुई।

हमारे यहां भी पाकिस्तान के बारे में जानकारी कहां दी जाती है, मैंने कहा! पता नहीं कितने लोगों को मालूम होगा कि आपके यहां कितने सूबे हैं। जब दिल्ली से चला तो एक मित्र ने सकपकाते पूछा था, तक्षशिला क्या उधर है?

मैंने काजी साहब को बताया, मैं गांधीजी का मुरीद हूं। वे बोले, पाकिस्तान के सभी कम्युनिस्ट गांधीजी का बहुत एहतराम करते हैं। मैंने छेड़ की- मेरा बस चले तो गांधी और मार्क्स के हाथ मिलवा कर आगे चलने को कहूं और हम उनके पीछे हो लें। काजी हंस पड़े। बोले, गांधीजी ने नीचे के तबके की माली हालत सुधारने के लिए कुछ और किया होता तो और अच्छा रहता। मैंने कहा, याद रखिए अभी

आपके यहां पाठ्य-पुस्तकों में संशोधन होना बाकी है। गांधीजी सबको साथ लेकर चलते थे, पर दिल में पीड़ा गरीब और दलित के लिए थी। हमने उन्हें अपना राष्ट्रपिता ठहरा कर गलती की। उनकी नीति समूचे उपमहाद्वीप की रोशनी बन सकती थी। मार्क्स का दर्शन आर्थिक है। गांधीजी का दर्शन समग्र जीवन का है। मगर अब पाकिस्तान में उन्हें लोग सिर्फ भारत का रहनुमा मान कर भूल जाएंगे!

काजी बोले, भारत का नहीं हिंदुओं का; यहां यही तो गलतबयानी है। लेकिन हम (पार्टी के लोग) जानते हैं कि गांधीजी ऐसे नहीं थे। इस तरह की गलतफहमियों को हम दूर करने की कोशिशें करते हैं। यहां यह भी माना जाता है कि भाजपा की तरह कांग्रेस भी हिंदुओं की पार्टी है, जबकि हमें मालूम है ऐसा नहीं है।

असल में यह बात सबसे पहले खुद कायदे-आजम जिन्ना ने कही थी। स्टेनली वोलपर्ट की लिखी जिन्ना की जीवनी 'जिन्ना ऑफ पाकिस्तान'- जो पाकिस्तान में बेहद लोकप्रिय है- में दस्तावेजों के हवाले से यह दर्ज है कि १९४५ में शिमला में वैवेल प्रस्ताव पर मौलाना आजाद से झड़प करते हुए जिन्ना ने मुस्लिम लीग के बरक्स कांग्रेस को हिंदुओं की पार्टी ठहराया था।

काजी बोले, मैंने वोलपर्ट की किताब अब तक नहीं पढ़ी है। पर जिन्ना साहब ने ऐसा कहा होगा।

जारी